(PHILOSOPHY)
PG II Sem., Paper-XIII ; UG I Part, Paper-I/III

PG II Sem.

Concept of Jiva and Purusha (Jain & Samkhya)

Dr. S.K. Singh
Dept. of Philosophy
Mob.-9431449951

1. जैन दर्शन में जीव

→ जैन दर्शन में आत्मा को ही जीव कहा गया है।

→ जैन तत्त्वमीमांसा वस्तुवादी और सापेक्षतावादी बहुत्ववाद है, जिसे अनेकान्तवाद कहा गया है; तत्त्व, वस्तु, द्रव्य अनेक हैं और प्रत्येक के अनेक धर्म हैं – 'अनेकधर्मात्मकमेव तत्त्वम्'।

→ जैन दर्शन में द्रव्य दो हैं – अस्तिकाय और अनस्तिकाय। अस्तिकाय द्रव्य पाँच हैं – जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म और अधर्म; जबकि अनस्तिकाय एक है – काल। पुनः अस्तिकाय द्रव्य भी दो प्रकार के हैं – जीव और अजीव। जीव चेतन आत्मा है जबकि अन्य चार अजीव अर्थात् अचेतन हैं।

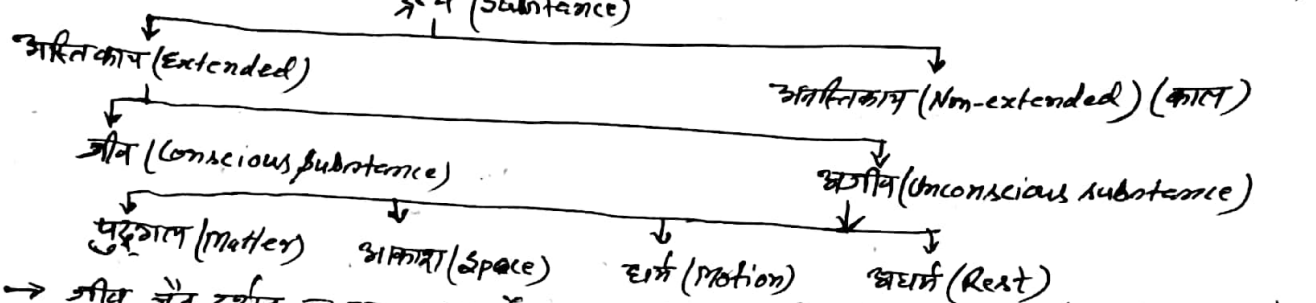

- द्रव्य (Substance)
  - अस्तिकाय (Extended)
    - जीव (Conscious Substance)
    - अजीव (Unconscious substance)
      - पुद्गल (Matter)
      - आकाश (Space)
      - धर्म (Motion)
      - अधर्म (Rest)
  - अनस्तिकाय (Non-extended) (काल)

→ जीव जैन-दर्शन का आत्मतत्त्व है। आत्मा (जीव) शरीर एवं इन्द्रिय से सर्वथा भिन्न एक चेतन सत्ता है। जीव (आत्मा) द्रव्य है और चेतना उसका स्वरूप या नित्य धर्म है। 'चेतना लक्षणो जीवः'। चेतना के अभाव में जीव का अस्तित्व संभव नहीं।

→ जीव की चेतना कभी नष्ट नहीं होती यद्यपि वह बाह्य कारणों से न्यूनाधिक रूप में धुँधली हो सकती है।

→ जीव में कुछ आगन्तुक धर्म भी होते हैं जो उसमें आते-जाते रहते हैं। सुख, दुःख, इच्छा, संकल्प आदि जीव के आगन्तुक धर्म हैं जबकि चेतना नित्य धर्म है। 'चेतना लक्षणो जीवः'।

→ जीव का चैतन्यरूप चेतना का परिणाम है। चेतना के तीन प्रकार हैं – ज्ञान, भावना और कर्म। ये तीनों एक साथ मिलकर 'उपयोग की अवधारणा' सामने लाते हैं। ज्ञानपूर्वक किसी कार्य को करना और उसका फल प्राप्त करना उपयोग है। इस प्रकार जीव ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है।

→ जैन दर्शन के अनुसार जीव स्वभावतः पूर्ण है। उसमें 'अनन्तचतुष्टय' अर्थात् चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती हैं। ये हैं – अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द। जीव के ये स्वाभाविक धर्म केवल मुक्त जीवों में अभिव्यक्त होते हैं; किन्तु बन्धनग्रस्त अवस्था में ये धर्म तिरोहित हो जाते हैं (नष्ट नहीं होते) और बन्धन मुक्त होने पर अर्थात् जीव के कर्मजन्य बाधाओं के दूर होने पर जीव के ये स्वाभाविक धर्म पुनः प्रकट हो जाते हैं।

→ जैन दर्शन चेतना की अभिव्यक्ति के आधार पर जीवों का वर्गीकरण करता है। सर्वप्रथम जीव के दो भेद हैं – मुक्त और बद्ध। मुक्त जीव 'अनन्तचतुष्टय' संपन्न हैं जबकि बद्ध जीव कर्म-पुद्गल से आक्रान्त होने के कारण उसका यह स्वरूप धूमिल रहता है।

~~→ बद्ध जीवों के दो भेद हैं – त्रस और जंगम। त्रस जीव गतिमान हैं और~~

→ बद्ध जीवों के दो भेद हैं – त्रस और स्थावर। त्रस जीव गतिमान हैं और स्थावर जीवों में गति नहीं होती। स्थावर जीवों में जीव के स्वरूप की न्यूनतम अभिव्यक्ति होती है।

→ स्थावर जीवों में जीव के स्वरूप की न्यूनतम अभिव्यक्ति होती है। इनके पाँच प्रकार हैं – पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिक। इनमें केवल एक इन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय पायी जाती है।

→ त्रस जीवों में स्थावर जीवों की अपेक्षा चेतना अधिक विकसित होती है। चैतन्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से त्रस जीवों के चार भेद हैं –

(i) द्वीन्द्रिय जीव → इन जीवों को दो इन्द्रिय – स्पर्शेन्द्रिय एवं रसनेन्द्रिय प्राप्त हैं; जैसे – सीप, घोंघा आदि।

(ii) त्रीन्द्रिय जीव → इन जीवों को तीन इन्द्रिय – स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय – प्राप्त हैं;

Scanned with CamScanner

(iii) चतुरिन्द्रिय जीव → इन जीवों को चार इन्द्रियाँ – स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय एवं चक्षुरिन्द्रिय – प्राप्त हैं; जैसे – भ्रमर, मक्खी आदि।

(iv) पंचेन्द्रिय जीव → इन जीवों में पाँचों इन्द्रियाँ – स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय का पूर्ण विकास रहता है; जैसे – मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

संक्षेप में

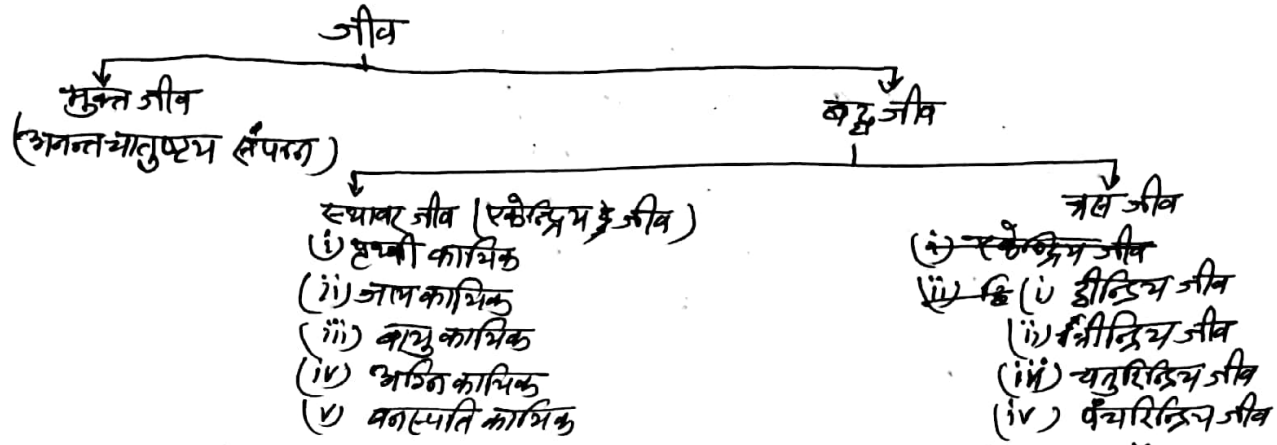

- जीव
  - मुक्त जीव (अनन्तचातुष्टय संपन्न)
  - बद्ध जीव
    - स्थावर जीव (एकेन्द्रिय जीव)
      - (i) पृथ्वी कायिक
      - (ii) जल कायिक
      - (iii) वायु कायिक
      - (iv) अग्नि कायिक
      - (v) वनस्पति कायिक
    - त्रस जीव
      - (i) द्वीन्द्रिय जीव
      - (ii) त्रीन्द्रिय जीव
      - (iii) चतुरिन्द्रिय जीव
      - (iv) पंचेन्द्रिय जीव

→ इस प्रकार जैन दर्शन 'अनेकजीववाद' में विश्वास करता है। यह संसार त्रस और स्थावर जाति के अनन्त जीवों से व्याप्त है। ये सभी जीव पूर्णता प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हैं।

• इस प्रकार गुणों के तारतम्य के आधार पर जीवों के अनन्त भेद हैं।

→ जैन दर्शन जीव को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता मानता है। ज्ञान जीव का स्वरूप गुण है, अतः वह स्वाभाविक रूप से ज्ञाता है। जीव कर्मों का वास्तविक कर्ता है और इसलिये कर्मफल का वास्तविक भोक्ता भी है।

→ जीव अस्तिकाय द्रव्य है, किन्तु उसका आकाश में पुद्गल के समान विस्तार नहीं होता।

→ जीव भौतिक शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से भिन्न है। स्वयं अरूपी होते हुये भी जीव अपने शरीर के रूप और परिमाण को धारण कर लेता है। वह न विभु है और न अणु है, वह शरीरपरिमाणी है; चींटी का जीव चींटी के शरीर के बराबर और हाथी का जीव हाथी के शरीर के बराबर होता है।

→ संसारी जीवों के शरीर, इन्द्रिय और मन होते हैं जिनसे उन्हें लौकिक ज्ञान में सहायता मिलती है, किन्तु वस्तुतः शरीर, इन्द्रिय, मन आदि पौद्गलिक हैं, कर्म द्वारा स्थापित आवरण हैं जो जीव के नैसर्गिक ज्ञान को अवरुद्ध करते हैं और उसके अपरोक्ष ज्ञान के बाधक हैं। कर्ममल का आत्यंतिक क्षय ही सर्वज्ञता और मोक्ष है।

→ संपूर्ण लोक जीवों से भरा पड़ा है। किन्तु जीवों में, लाइबनिज के चिदणुओं के समान, गुणात्मक भेद नहीं है, केवल मात्रा-भेद है।

सबसे निकृष्ट जीव एकेन्द्रिय हैं जो भौतिक जड़तत्त्व में रहते हैं तथा निष्प्राण और अचेतन प्रतीत होते हैं; किन्तु इनमें भी प्राण तथा चैतन्य सुषुप्तावस्था में विद्यमान है। वनस्पति जगत के जीवों में चैतन्य तन्द्रिल अवस्था में है। मर्त्यलोक के क्षुद्र कीटों, चींटियों, मक्खियों, मधुमक्खियों, पक्षियों, पशुओं और मनुष्यों में जीव के चैतन्य की उत्तरोत्तर उत्कर्ष की प्रतीति होती है। इसके अतिरिक्त नरक के जीव और स्वर्ग के देवगण भी हैं। किन्तु सर्वोत्कृष्ट जीव मुक्त जीव हैं जिनमें आवरणीय कर्मों के क्षय के कारण अपना स्वरूप शुद्ध रूप में प्रकाशित होता है और जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द संपन्न (अनन्तचातुष्टयसम्पन्न) हैं।

— Dr. S. K. Singh
Dept. of Philosophy
Mob. - 9431449951.

Scanned with CamScanner